तेवरी-पक्ष

तेवरी–विधा को समर्पित आयोजन

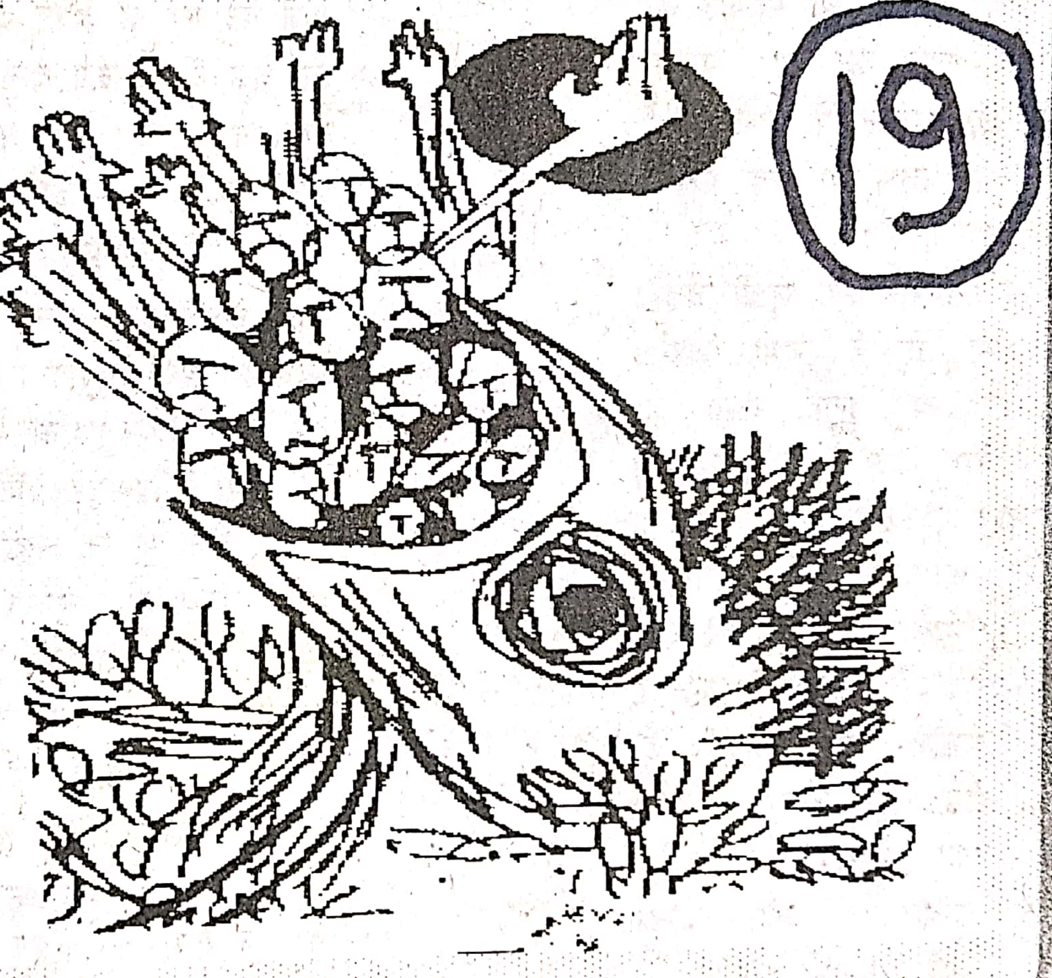

(वर्ष-२४, अंक-१, जनवरी-मार्च-२००७, मूल्य-एक प्रति ५रु०, वार्षिक मूल्य २०रु०)

परामर्श–डॉ. गोपालबाबू शर्मा, सहयोग–दर्शन बेज़ार

संपादक-रमेशराज

Scanned by CamScanner

छह तेवरियाँ

कुंदन सिंह सजल

कुछ तो छोटे हैं कुछ बड़े पत्थर।
वक्त के सच हैं आंकड़े पत्थर।
कहीं प्रतिमाएं बनकर पुजते हैं
कहीं दीवार में जड़े पत्थर।
खेत परिवार में बंटा जब-जब
साक्ष्य बन हो गये खड़े पत्थर।
नीव मंदिर की हो या मस्जिद की
अपना बलिदान कर पड़े पत्थर।
किसी की शक्ल में ढले होंगे
किसी की अक्ल पर पड़े पत्थर।

२

कुछ तो गमगीन कुछ सुखी चेहरे।
वक़्त की देन है सभी चेहरे॥
रात भर तो गुनाह करते हैं।
दिन में छुप जाते हैं वही चेहरे॥
मुखौटों को मात करने वाले।
मिलेंगे आपको कई चेहरे॥
तन से सागर में समा जाने को।
रोज बदले है ये नदी चेहरे॥
हरेक सख़्श का तजुर्बा है।
कई ओढ़े हैं दोस्ती चेहरे॥
आप लेकर चिराग़ भी ढूंढें।
मिलने दुश्वार हैं सही चेहरे॥

सूर्य कुमार पांडेय

न वह कुछ आगा पीछा देखता है।
मिले हड्डी जहां भी नोचता है।
उसे खुद भौंकने की क्या ज़रूरत
वो कुत्ते हर गली में पालता है।
लपक पड़ते हो तुम चुनने की खातिर
वो जब भी तुमको टुकड़े फेंकता है।
तुम्हारा उसका रिश्ता किस जनम का
न यह उसको, न वह तुमको पता है।

डॉ0 ब्रह्मजीत गौतम

सँभल के चलना नज़र जमाये रस्ते में
मौत खड़ी है घात लगाये रस्ते में।
पता नहीं किस कोने से आकर गोली
दिल के आर-पार हो जाये रस्ते में।
अविश्वास का कोहरा इतना घना हुआ
अपने भी सब दिखें पराये रस्ते में।
मानवता का रक्त पिये, मदमस्त बने
नाच रहे रिंदों से साये रस्ते में।
आज बन गए वो अपने जानी दुश्मन
कल तक थे जो दीप जलाये रस्ते में।
ज्वालाओं में आज घिरा अपना उपवन
फूलों के चेहरे मुरझाये रस्ते में।

गिरिमोहन गुरु

एक टुकड़े को थान कहते हैं।
भौंकना हम सुगान कहते हैं।
कर्म को जिसने खुदा मान लिया
हम उसे बेइमान कहते हैं।
जान लेने में जो नहीं हिचके
ऐसे जन को सुजान कहते हैं।
सिर्फ मतदान को ही पंडित जी
आजकल श्रेष्ठ दान कहते हैं।
खंडहर के समान ये घर है
गर्व से हिन्दुस्तान कहते हैं।

सुरेश त्रस्त

ग़म के मारों को ढूंढ़ लाया हूँ।
मैं बहारों को ढूंढ़ लाया हूँ।
लूट लाये जो डोली दुल्हन की,
उन कहारों को ढूंढ़ लाया हूँ।
आप डूबेंगे भँवर में, लेकिन,
मैं बहारों को ढूंढ़ लाया हूँ।
चमन उजाड़े हैं खिलते जिनने,
गुनहगारों को ढूंढ़ लाया हूँ।
'त्रस्त' जीवन के अँधेरे तो मिटें,
चाँद-तारों को ढूंढ़ लाया हूँ।

Scanned by CamScanner

चर्चा

तेवरी पर आये दिन आरोप जड़े जाते रहे हैं कि 'तेवरी अनपढ़ और गँवारों का आत्म-प्रलाप है। अपरिपक्व मस्तिष्कों की उपज है।'

यह आरोप कितने दुराग्रहयुक्त या सार्थक हैं, इसका निर्णय तो समय ही करेगा। यहाँ सवाल दूसरा है-यदि तेवरी स्टंट या बकवास है तो आज हिन्दी में लिखी जा रही कथित हिन्दी ग़ज़लें, क्या ग़ज़ल के शास्त्रीय पक्ष और कथ्य का परिपक्व और विलक्षण नमूना प्रस्तुत कर रहीं हैं? इसकी जाँच-पड़ताल के लिये 'तुलसी प्रभा' के हिंदी ग़ज़ल विशेषांक-सित०-२००० की कुछ ग़ज़लों की थोड़ी बानगी प्रस्तुत है-

डॉ. अनिल गहलौत हिन्दी ग़ज़ल के चर्चित हस्ताक्षर हैं। उनका एक ग़ज़ल संकलन 'एक पत्थर झील में' नाम से प्रकाशित हुआ है। उक्त संकलन में ग़ज़ल के शास्त्रीय स्वरूप को लेकर बड़ी-बडी़ बातें कही गयी हैं। अपनी गम्भीर बातों को लेकर वे स्वयं कितने गम्भीर हैं? आइए देखें-

डॉ. गहलौत 'तुलसी-प्रभा' के पृ० २१ पर छपी अपनी प्रथम ग़ज़ल में 'कटा', 'अटपटा' की तुक 'बँटा' से मिलाते हैं। अपनी दूसरी ग़ज़ल में वे 'अनुबन्ध' की तुक 'सम्बन्ध','प्रतिबन्ध' और 'तटबन्ध' से निभाते हैं। यह कथित शुद्ध काफियों का कैसा नमूना है? क्या इसी तरह हिंदी ग़ज़ल को ऊँचाइयाँ छूना है? ऐसे में इसी अंक में प्रकाशित प्रदीप कुमार 'रोशन' की इन पंक्तियों को गुनगुनाने में कुछ ज्यादा ही आनंद आने लगता है-

''बड़ी कशमकश में पड़ी है ग़ज़ल/ अदब से बिछड़ के खड़ी है ग़ज़ल।''

डॉ. अश्वघोष ने हिंदी साहित्य में अच्छी-खासी ख्याति अर्जित की है। निस्सन्देह वे एक सार्थक रचनाकार हैं। किन्तु पृ० ३० पर प्रकाशित उनकी ग़ज़ल के काफिये का 'धुआँ', 'पगडंडियाँ',' खिड़कियाँ' तय करते हुए 'बयाँ' होता है और 'सुर्खियाँ' अर्थात् तुक के रूप में सिर्फ 'याँ' बन जाता है। यह काफियों का कैसा शास्त्रीय नाता है? ऐसे में इस अंक के सम्पादक श्री प्रेममंधान के स्वर में ही अपना स्वर सम्मिलित करते हुए, उनकी ही एक ग़ज़ल के शेर के माध्यम से 'हिन्दी ग़ज़ल' के प्रति अपना दृष्टिकोण रखना चाहेंगे-

''प्रेम' हमारे मतभेदों का कारण बस इतना-सा है/ हम कहते हैं - 'ग़ज़ल कही है', वो कहते - 'झक मारी है'।''

ग़ज़ल के क्षेत्र में झक मारने की कला में माहिर हिन्दी ग़ज़लकारों का ग़ज़ल के मूल स्रोत, चरित्र (कथ्य) और शास्त्रीयता से पिण्ड छुड़ाकर ग़ज़ल कहने का यह हिन्दी अन्दाज अब बहरों की हत्या कर, हिन्दी के साथ प्रस्तुत होने पर आमादा है। इसमें ग़ज़ल के ग़ज़लपन का एहसास कम, उपहास ज्यादा है।

पुरुषोतम यकीन भी हिन्दी ग़ज़ल के एक चर्चित हस्ताक्षर हैं। ग़ज़ल की ग़ज़लियत की हत्या करना कोई इनसे सीखे। पृ० ४७ पर उनकी एक 'दोहा ग़ज़ल' प्रकाशित है, जिसने हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में छन्दों के नाम के आधार पर ग़ज़ल के अनेक नामकरणों के द्वार खोल दिये हैं और अब लग रहा है कि हिन्दी ग़ज़ल के नाम पर 'चौपाई ग़ज़ल', 'गीतिका ग़ज़ल', 'सोरठा ग़ज़ल', 'पीयूषवर्ष ग़ज़ल', 'घनाक्षरी, कवित्त और सवैया ग़ज़ल' आदि-आदि असंख्य ग़ज़लें सामने आयेंगी, जो ग़ज़ल के क्षेत्र में निस्सन्देह एक नया इन्क़लाब लायेंगी।

पुरूषोत्तम यकीन की यह 'दोहा ग़ज़ल' प्रथम तो दोहा छन्द का निर्वाह करने में ही असफल है। इसकी दूसरी पंक्ति के प्रथम चरण में जहाँ अल्पविराम लिया जाता है, वहाँ 'मेरे' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसमें दोनों मात्राएँ दीर्घ हैं, जबकि यहाँ लघु के बाद दीर्घ स्वर की व्यवस्था होनी चाहिए। हिन्दी ग़ज़ल में कुछ विद्वान इसे उर्दू वालों की तरह मात्रा या स्वर गिराकर 'मिरे' पढ़ना-लिखना चाहें तो यह पंक्ति मात्रा के अपने ऐब को ढकने में सफल हो सकती है। हिन्दी ग़ज़ल के हो-हल्ला के इस दौर में ऐसे विद्वान ऐसा करेंगे भी। एक चतुर सुनार की तरह सोने में पीतल भरेंगे भी। ऐसा विश्वास है। यही तो आज ग़ज़ल का अनुप्रास है, मधुमास है। इसलिये यकीनजी की इस ग़ज़ल के दूसरे पहलू पर आते हैं। इस ग़ज़ल में 'के दीप' की पुनरावृत्ति यह कहती है कि यह इस ग़ज़ल का रदीफ है। चलो हम भी माने लेते हैं, किन्तु इसकी कुछ पंक्तियों

Scanned by CamScanner

में 'के दीप' का गायब हो जाना यह सिद्ध करता है कि रदीफ का इस ग़ज़ल में सफल निर्वाह नहीं हो पाया है। ग़ज़ल में यह कैसी प्रेत-छाया है? इस ग़ज़ल में (काफियों) की व्यवस्था क्या है? 'के दीप' रदीफ से पूर्व 'आँखों', 'गरीब', 'सोने', 'खुशियों' और 'ग़ज़ल' शब्द तुक के रूप में आये हैं। इन शब्दों के द्वारा कौन-सी उत्कृष्ट नहीं तो निकृष्ट तुक बनती है? क्या यहाँ भी तुकों की भाँग छनती है? इस भाँग का आनन्द लेते हुए 'यकीनजी' के आखिरी शेर के कथन में आइए हम भी मन लगाएँ और गुनगुनाएँ-

'' आया लुत्फ यकीनजी, सुने करारे शेर
दोहे के घर में जले, खूब ग़ज़ल के दीप।''

ग़ज़ल की मातमपुर्सी करते हुए ग़ज़ल के दीप जलाने की यह फनकारी आजकल हिन्दी ग़ज़ल वालों के बीच पूरे शबाब पर है, लेकिन ग़ज़ल की सिसकन, सुबकन से हिन्दी ग़ज़लकार बेखबर हैं। साथी छतारवी अच्छे गीतकार हैं। उनके 'विषैले गीत' संग्रह की गीतात्मकता असंदिग्ध है। किन्तु उनकी ग़ज़ल पर जोर आजमाइश उनके भीतर छुपे कुशल रचनाकार को प्रश्नों के घेरे में खड़ा कर देती है। पृ० ८५ पर वे 'डर' की तुक 'जड़' और 'धड़' से मिलाते हैं। उनकी दूसरी ग़ज़ल में 'ग़ज़ल' की तुक 'शक्ल' अगर मतला में कथित रूप से ठीक है तो 'नकल', 'सकल', 'अकल' में काफिये सिसकते हुए महसूस होते हैं और ग़ज़ल की आँख को 'सजल' कर देते हैं। उन्हीं के शब्दों में ग़ज़ल के प्रति उनकी असमर्थता यूँ व्यक्त होती है-
''जैसी आयी, मन में आयी, मित्र ग़ज़ल लिख दी/ कभी न देखी-भाली उसकी, किन्तु शक्ल लिख दी।''

बिना शक्ल (शिल्प) देखे ग़ज़ल लिखने की यह प्रकिया, निराकार को साकार में बदलने का उपक्रम है। अतः निराकार का यह साकार रूप अगर हिन्दी ग़ज़ल है, तो ऐसी ग़ज़लें, हिन्दी ग़ज़ल को नये आयाम जरूर देंगी, अब न सही आगे चलकर नूर देंगी।

श्री नूर मोहम्मद नूर जी ने भी हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में खूब नूर बिखेरा है। तुलसी प्रभा के पृ० ८० पर मतला शेर में 'सदी' की तुक 'नदी' से मिलाने के बाद वे आगे की तुकों के रूप में 'रोशनी' की 'खलबली' बड़ी 'बेदिली' के साथ करते हुए 'शाइरी' का आभास देते हैं। मतला शेर में ही काफ़िया तंग होने के कारण सब तुकें 'दलदली' हो जाती हैं। ग़ज़ल के इस दलदल के बीच वे अनायास इस सच्चाई को उजागर कर बैठते हैं-

'हारी-हारी ग़ज़ल, कारी-कारी ग़ज़ल / आजकल कहूँ मैं ढ़ेर सारी ग़ज़ल।
तुम सुनो, मत सुनो, नूर को मत गुनो/ वह कहेगा मगर उम्र सारी ग़ज़ल।'

पृ० ८२ पर पांडेय आशुतोष अपनी पहली ग़ज़ल में तुक 'एक' से 'अभिषेक' पाकर ऐसी 'दिल फेंक' तुक का अभिलेख प्रस्तुत करते हैं कि सम्पूर्ण ग़ज़ल की तुकान्त व्यवस्था खस्ता बन जाती है। दूसरी ग़ज़ल में मतला शेर ग़ायब है, पर यह हिन्दी ग़ज़ल है, इसलिये सफल है? इस ग़ज़ल में 'वंचना' की तुकें 'चना', 'याचना', 'आलोचना' कुल मिलाकर 'चना' घना प्रकाश फैलाने के स्थान पर अंधकार फैलाती हैं। ग़ज़ल के नाम पर ग़ज़ल के काफियों को खाती हैं।

ग़ज़ल के प्रखर व्याख्याता श्री अनिरूद्ध सिन्हा की पृ० ३१ पर प्रकाशित दूसरी ग़ज़ल के छः काफियों में 'शाम' और 'काम' को छोड़कर 'नाम' काफिया चार बार आया है। काफिया के रूप में 'नाम' की यह तुक क्या स्वर परिवर्तन का सही आधार खड़ा कर सकती है? यह उनके इसी अंक में छपे 'ग़ज़ल की समझ के विरोध' उल्टा लटका देती है। उनकी खिल्ली उड़ा देती है।

डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल हिन्दी ग़ज़ल के चर्चित हस्ताक्षर ही नहीं, ग़ज़ल के एक अच्छे प्रवर्त्तक और उद्घोषक हैं। ग़ज़ल को हिन्दी में चर्चित कराने का श्रेय भी अधिकांशतः उनके हिस्से में है। लेकिन पृष्ठ ७६ पर प्रकाशित उनकी दूसरी ग़ज़ल के मतला में 'चाँदनी' की तुक 'रोशनी' से मिलने के बाद आगे चलकर 'आदमी' और 'नदी' की 'फुलझड़ी' तक जाती है। इस प्रकार यह ग़ज़ल सुबकते हुए काफियों के बीच हिन्दी ग़ज़ल कहलाती है।

पृ० ५६ पर रसल विश्वामित्र हिन्दी ग़ज़ल से रदीफ गायब कर ग़ज़ल को एक नया आयाम देते हैं। रदीफ से मुक्ति का यह प्रयास आगे चलकर हिन्दी ग़ज़ल की शास्त्रीयता का शायद कोई मान बन जाये, पहचान बन जाये, तो आश्चर्य कैसा?

Scanned by CamScanner

हिन्दी ग़ज़ल में होता है ऐसा।

'जिन्दगी' से 'आशिकी', 'रोशनी', 'आदमी', 'रागनी' आदि 'शायरी' के लिये अनुकूल तुकें हो सकती हैं लेकिन ग़ज़ल में रदीफ के बिना इनका औचित्य समझ से परे है। संयुक्त रदीफ-काफिये की यह ग़ज़ल कैसा कमाल करे है?

पृ० ५१ पर ग़ज़ल के महारथी महेश अनघ जी विराममान हैं। उनकी ग़ज़लों की तुकें उत्कृष्ट हैं। लेकिन 'मन' की तुक 'आसन्न' से खलती है। उनकी प्रथम ग़ज़ल कौन-सी बहर या छंद में कही गयी है? इसकी हर पंक्ति मात्रा-दोष और लय-भंगता की शिकार है। हिन्दी ग़ज़ल का यह कैसा चमत्कार है?

मूँगफलियाँ खा चुकने के बाद 'जनगणमन' सुनने का कथन प्रभावशाली है, मौलिक है। परेशानी बस यही इक है-

'यह दौरे ग़ज़ल है 'नरेन्द्र', दौरे ग़ज़ल में / बेवज़्न तवाज़ुन की बहर देखते चलो।'

अस्तु! बेवज़्न बहरों, मतला के अभावों, काफियों के अशुद्ध प्रयोगों, रदीफों का गायब हो जाना, मक्ता से हर प्रकार मुक्ति या बहरों के स्थान पर हिन्दी-छंदों की त्रुटिपूर्ण पूर्तियों, घुसपैंठों अर्थात् ग़ज़ल के संपूर्ण शिल्प का कचूमर निकालकर, ग़ज़ल के इसी शिल्प को ओजस्, प्राणवान बतलाना या मनवाना और अपनी इसी कुशल कारीगरी पर मंत्रमुग्ध होते हुए तेवरीकारों को गरियाना, उन्हें पाकिस्तानी-खालिस्तानी, हरिगढ़ी या हरिपुरी बतलाना, अगर हिन्दी ग़ज़लकारों की यही समझदारी है तो यह निस्संदेह मानसिक बीमारी है, तेवरी के खिलाफ आँख मूँदकर बयान देने की तैयारी है।

हिन्दी ग़ज़लकारों ने सिर्फ ग़ज़ल के ही शिल्प की हत्या की हो और यहीं अपनी यह शल्यक्रिया रोक ली हो, ऐसा नहीं। ये ग़ज़ल की आत्मा (कथ्य) पर भी लगातार चोट कर रहे हैं। मूल चरित्र की हत्या करने में इन्हें आनन्द का अनुभव हो रहा है। श्री अनिरूद्ध सिन्हा अपने आलेख 'ग़ज़ल की समझ का विरोध' में फरमाते हैं कि-''मैं मानता हूँ कि ग़ज़ल हुस्नो-इश्क से ताल्लुक रखती है। यह इसका अपना सौन्दर्य-बोध है, साथ ही जीवन का एक अहम् पक्ष भी। मगर दूसरी ओर जीवन का कटुपक्ष भी इसके हिस्से में आता है।''

अन्य ग़ज़लकारों की तरह ग़ज़ल की अधोमुखी स्थापनाओं में श्री अनिरूद्ध सिन्हा की बातों को भी मानें तो अर्थ यह कि अब ग़ज़ल प्रण [illegible]त्मकता के साथ-साथ समकालीन विकृतियों-विसंगतियों और शोषण के प्रति आक्रात्मकता का आभास भी देती है। श्री अनिरूद्ध सिन्हा या उन जैसे ग़ज़ल के समझदारों की दृष्टि में ऐसे तर्क इसलिये सही हैं क्योंकि किसी की पत्नी अन्य किसी के साथ-साथ बार-बार सो सकती है, वह कहलायेगी तो पत्नी ही। रखैल कैसे हो जायेगी? सूपनखा और सीता में आखिर फर्क है ही क्या? हैं तो दोनों स्त्रियाँ ही।

ऐसे विद्वान, सचिवालय, विद्यालय, मदिरालय, पुस्तकालय और वैश्यालय के अन्तर को आखिर समझने की कोशिश करें तो आखिर क्यों करें? हैं तो सब 'आलय' ही। माँ, भाभी, बूआ, दादी, चाची, मौसी, बहन, बेटी कहकर ऐसे सुधी लोग स्त्री के व्यक्तित्व को खण्डित करने का प्रयास क्यों करें? स्त्री अन्ततः स्त्री ही है। गुण्डे और शरीफ, अध्यापक और विद्यार्थी, शासक और शासित, अय्याश और योगी में ये विद्वान भेद मानें तो क्यों मानें? ये सब भी तो आदमी के ही रूप हैं या आदमी हैं।

यदि कोई हत्यारा, दुधारा त्यागकर बुद्ध बना है तो ये उसे शुद्ध मानकर विवाद को क्यों बढ़ायें। अतः हत्यारा ही बतायें, क्योंकि था तो हत्यारा, क्या हुआ जो त्याग बैठा दुधारा?

ग़ज़ल के पाँवों से घुँघरू छीनकर, लबों से शराब का स्वाद हटाकर, उसके हाथों में क्रान्ति की मशाल और तलवार थमाने वाले हिन्दी ग़ज़ल के समझदारों को इतना तो बताना ही [illegible] कि '[illegible] के चुम्बन' और 'बलात्कार के [illegible] में क्या कोई फर्क नहीं होता? अगर नहीं तो ग़ज़ल की हू-बहू [illegible]कनक में रची गयी 'हजूल' ग़ज़ल से अलग कैसे हो गयी?

प्रेमपूर्ण बातचीत की शालीनता और अश्लीलता [illegible] ही फार्म में ग़ज़ल और हजूल को मान्यता प्रदान करने वाले विद्वान क्या मानसिक रूप से विक्षिप्त थे?

उक्त बातों, तथ्यों या चरित्र की सही पहचान को ध्यान में रखते हुए यदि तेवरीकारों ने तेवरी को ग़ज़ल से अलग किया तो यह अलीगढ़ को हरीगढ़ बनाने की साजिश कैसे हुई? इसके लिये क्या कोई सतर्क तथ्य सामने नहीं आना चाहिए?

Scanned by CamScanner

ग़ज़ल से तेवरी को अलग करने की यह मंशा अगर कोई साजिश मानी जायेगी? या मानी जा रही है तो ऐसी ही साजिश की दुर्गन्ध इन ग़ज़ल के हिंदी भक्तों को चुटकुला, लघुकथा, बोधकथा, लघुकहानी में अन्तर करने वालों में भी आनी चाहिए, क्योंकि इन्हें भी कथ्य या चरित्र के आधार पर अलग किया गया है। लेकिन यहाँ वे चुप ही रहेंगे, बस तेवरीकारों को ही साजिशी कहेंगे।

सहवास के चुम्बन और बलात्कार के क्रन्दन को एक ही आत्मा के खाने में ठूँसकर, ग़ज़ल को परम-आत्मा का स्वरूप प्रदान करने वाले ये हिंदी ग़ज़लकार अगर शराब के स्थान पर ग़ज़ल के हिस्से में यातना, बेबसी, लाचारी, तल्खी को लाते हैं और शराबी ग़ज़ल के कथन भले ही चाकू की तरह तन जाते हैं। लेकिन यह क्रोध, आक्रोश, विरोध और असंतोष की अनुभावमय शक्ल फिर भी ग़ज़ल कहलाती है तो ऐसे ग़ज़ल के परमात्माओं के समक्ष अनुनय-विनय का अर्थ, व्यर्थ और असमर्थ ही होना है। फिर भी निवेदन कि साथ अपनी बात-अगर ग़ज़ल के हिस्से में प्रणयात्मकता के साथ-साथ आक्रामकता भी आती है तो क्या भजन के हिस्से में 'धनुष की टंकार', 'खून से सनी हुई तलवार' या 'वैश्या का देह व्यापार' भी आ सकता है?

क्या विनय, अग्निलय बनकर विनय का परिचय दे सकती है? वन्दना के हिस्से में क्या इश्वर-निन्दा आ सकती है?

उक्त सारी दलीलों को ग़ज़ल के कथ्य के परिवर्तन के तर्ज पर क्या ग़ज़ल के कथित पंडित अपने गले उतार सकते हैं? ग़ज़ल जैसा अलौकिक कारनामा (जिसमें चरित्र तो बदला हो लेकिन नाम नहीं) ग़ज़ल को छोड़ कहीं और गिना सकते हैं? क्या वे 'हज़्ल' को ग़ज़ल बता सकते हैं?

श्री रतीलाल शाहीन (आजकल मार्च -२०००, पृष्ठ २१) तेवरी की सार्थकता को खारिज करते हुए कहते हैं कि-''नाम बदल लेने से गुण या स्वभाव नहीं बदल जाता है। ग़ज़ल का तेवरी नाम ऐसा ही लगता है जैसे अलीगढ़ को कोई हरिपुर कहे।''

उनके इस कथन के प्रति निवेदन इतना ही है कि अलीगढ़ को हरिपुर में बदलने के पीछे जो साम्प्रदायिक दुर्गन्ध छुपी है, उसे शाहीनजी महसूस नहीं करना चाहते हैं तो इसमें तेवरीकारों का क्या दोष? अगर इस दुर्गन्ध को वे तेवरीकारों के मत्थे मढ़ना चाहते हैं तो ग़ज़ल को हिंदीग़ज़ल कहने वाले हिन्दी ग़ज़लकार पहले अपने अन्दर की साम्प्रदायिक दुर्गन्ध को महसूस करें। दूसरों की आँख में टेंट देखने से पहले इस प्रश्न का उत्तर दें-माना नाम बदलने से गुण या स्वभाव नहीं बदल जाता, पर गुण या स्वभाव बदलने से कुछ हो न हो ग़ज़ल तो 'हज़्ल' हो जाती है। -रमेशराज

रचनाकारों से निवेदन

'तेवरी-पक्ष' एक स्वस्थ सत्योन्मखी चिन्तन की ओजस् अभिव्यक्ति है। रचनाएँ प्रेषित करने से पूर्व रचनाकार, रचना की श्रेष्ठता को स्वयं परखें, तत्पश्चात् ही रचनाएँ भेंजें। एक साथ ढेर सारी रचनाएँ न प्रेषित करें। विविध विषयों पर निबन्ध, आलेख, व्यंग्य आदि का स्वागत है। रचनाएँ कागज के एक ओर उचित हाशिया छोड़कर, सुस्पष्ट तरीके से अंकित या टंकित होनी चाहिए। कृपया कार्बन कापी न भेजें। हर रचना के अन्त में रचना के मौलिक, स्वरचित, अप्रकाशित होने को प्रमाणित किया जाना आवश्यक है। कृपया लम्बी रचनाएँ न भेंजें। 'प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत' के सन्दर्भों को मुखरित करती ग़ज़लों को ही हम ग़ज़ल मानते हैं। कथित ग़ज़ल की तकनीकीय व्यवस्था में आबद्ध, विसंगति, व्यवस्था विरोध की कथित ग़ज़लों को हम 'तेवरी' शीर्षक देकर एक सही मूल्य का सही मूल्यांकन का प्रयास करते हैं। ग़ज़ल के काफिये या तेवरी के अन्त्यानुप्रास के प्रयोग में सावधानी अवश्य बरतें। तुकों के दुहराव या बे-मेल स्वर के आधार को किसी भी प्रकार शुद्ध नहीं ठहराया जा सकता। हमारी बातों से असमति पर आपके सुझाव भी सादर आमंत्रित हैं। समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियां भेजना आवश्यक है। पुस्तक की समीक्षा न स्वयं भेंजें न किसी से भिजवाएँ।

Scanned by CamScanner

रमेशराज की १० हाइकुदार तेवरियाँ

रमेशराज एक चर्चित और स्थापित तेवरीकार हैं। आपने तेवरी आन्दोलन को एक नई दिशा प्रदान की है और यह सिद्ध कर दिखाया है कि तेवरी का छन्द शास्त्र या काव्य शास्त्र ग़ज़ल से बिलकुल भिन्न है। तेवरी पर ग़ज़ल की नकल का आरोप निराधार है। तेवरी को एक कथा सूत्र में पिरोकर आपने कृष्ण और गोपियों के माध्यम से ऊधौ को संदेश-वाहक बनाकर तेवरी-शतक- ''ऊधौ कहियो जाय' लिखा है। 'ऊधौ कहियो जाय' की तेवरियों का कथन मौलिक इसलिये भी हैं क्योंकि इस कथा में कृष्ण, कृष्ण न होकर गद्दी पर बैठे हुये शासक के रूप में आज के अहंकारी और जन-विरोधी किरदार हैं। इन तक संदेश पहुंचाने वाली राधा या गोपियों के रूप में आम जनता है, जिसका शोषण उत्पीड़न हो रहा है। इस तेवरी शतक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें ५०से लेकर २०-२५ तेवरों (ग़ज़लकारों की दृष्टि में शेर) वाली कई तेवरियाँ भी हैं। इन लम्बी तेवरियों के माध्यम से रमेशराज ने एक बार फिर हिंदी साहित्य जगत को चौंकाया है। इतनी सारी खूबियों से युक्त 'तेवरी शतक' का 'सूर्य का उजाला' में क्रमशः प्रकाशन करने पर मुझे अपार खुशी का अनुभव इसलिये हुआ क्योंकि इस शतक का पूरे हिंदुस्तान के साहित्यकारों के बीच गर्मजोशी से स्वागत हुआ। मेरे समक्ष प्रतिक्रिया के रूप में आये ढेरों पत्र इस बात के साक्षी हैं।

रमेशराज काव्य में नये-नये मौलिक और सार्थक प्रयोगों के लिये विख्यात हैं। तेवरी में एक नया प्रयोग करते हुए आपने 'हाइकुदार तेवरियाँ' लिखी हैं। इन तेवरियों की विशेषता यह है कि इसकी 'हर पंक्ति' अपने-आप में 'एक पूर्ण हाइकु' को समाहित किये है। ५,७,५ वर्णों के क्रम को प्रतिपादित करती हुई 'हर पंक्ति' में २४ मात्रा का प्रावधान भी है। इस प्रकार देखें तो 'हर पंक्ति' मात्रिक छंद के साथ-साथ एक वर्णिक छंद की शर्त को भी पूरा करती है। रमेशराज के संपादन में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'तेवरी-पक्ष' में हाइकुदार तेवरियों को प्रस्तुत करते हुए मुझे अपार हर्ष और गर्व का अनुभव हो रहा है। **–उपेंद्रपाल सिंह 'पवन'**

(१)

ऐसा भी तप / करती विधिवत / कभी ज़िंदगी,
जग की पीड़ा / हरती विधिवत / कभी ज़िंदगी।
सिर्फ कालिमा / अब जग-भर में / नहीं लालिमा,
रंग जहाँ में / भरती विधिवत / कभी ज़िंदगी।
हाल न जाने / नयन अश्रुमय / काल न जाने,
गाल वक्त के / छरती विधिवत / कभी ज़िंदगी।
खारा सागर / नज़र-नज़र में / शंकाएँ-डर,
दुःख-दर्दों से / तरती विधिवत / कभी ज़िंदगी।
है अँधियारा / अब नफरत ने / सबको मारा,
दीप प्रेम के / धरती विधिवत / कभी ज़िंदगी।

(२)

कहीं देखिये / अति अड़चन-सी / कहाँ नहीं है?
हर सीने में / जलन-चुभन-सी / कहाँ नहीं है?
ये दुनिया है / मखमल फिर भी / वो कुर्ता है,
जिसमें यारो / दर्द उधड़न-सी / कहाँ नहीं है?.
मद की छाया / हरदम इन में / धन की माया,
अब रिश्तों में / कटु अनबन-सी / कहाँ नहीं है?
भौतिकवादी / हुए चलन सब / छल के आदी,
मन में पीड़ा / सघन-सघन-सी / कहाँ नहीं है?
माना हमने / अधर-अधर पै / नित ख़ामोशी,
किन्तु दिलों में / सनन-सनन-सी / कहाँ नहीं है?

(३)

'आज' खो गया / पर 'कल' हमसे / छूट न जाये,
धूप सरीखा / यह पल हमसे / छूट न जाये।
खिला हुआ है / कुछ सुख हमको / मिला हुआ है,
मधु-भावों का / शतदल हमसे / छूट न जाये।
और लड़ेंगे / हम इस तम से / नहीं डरेंगे,
नूर रचेंगे / यह बल हमसे / छूट न जाये।
साथ निभाना / प्रबल भँवर से / हमें बचाना,
जहाँ खड़े हैं / यह थल हमसे / छूट न जाये।
कली खिली है / अधर-अधर को / खुशी मिली है,
इसे बचाना / मधुजल हमसे / छूट न जाये।

(४)

कभी ज़िंदगी / मधुर कहन थी / कहाँ गयी वो?
हर इन्सां में / कल धड़कन थी / कहाँ गयी वो?
जी अकुलाये / अब दम निकले / फ़िज़ा न भाये?
ख़ूब हवा में / सनन-सनन थी / कहाँ गयी वो?
नैना तर हैं / अब हर मन में / भारी डर है
ख़ुशी हमारी / सघन-सघन थी / कहाँ गयी वो?

Scanned by CamScanner

लोग न बोलें / मधुमय लय में / भेद न खोलें?
मुसकाती-सी / हर चितवन थी / कहाँ गयी वो?
आज उदासी / पल-पल बढ़ती / साँस जरा-सी
मन की आशा / सुमन-सुमन थी / कहाँ गयी वो?

(५)

अब तो ऐसा / इस जग भर में / दौर आ गया,
आना सुख था / लेकिन अब डर / और आ गया।
जाल न देखा / बहुत अभागिन / काल न देखा,
बोली चिड़िया / झट से हँसकर / 'कौर आ गया'।
मन है सूखा / तरुवर का अब / तन है सूखा,
बोले कोयल / किन्तु कुहुक कर / 'बौर आ गया'।
धन क्या दीखा / विहँस उठा वह / पुष्प सरीखा,
मधु बातों का / उसके मुख पर / तौर आ गया।
लूट मचायी / उसने छलमय / नीति बनायी,
स्वयं लुटा तो / सत्य-धरम पर / गौर आ गया।

(६)

प्रीति ज़रा-सी / पर दुःख-छल है / बारहमासी,
सबने सीखी / अब इस युग में / चाल सियासी।
ये नगरी है / महज़ असत की / बस मायावी,
यहाँ मिलेगी / बन्धु हर जगह / सिर्फ़ बला-सी।
कल जानेगा / विजय समय की / झट मानेगा,
अधिकारी का / वहम पाल मत / तू चपरासी।
जहाँ खेत थे / जिनके परिचय / रेत-रेत थे .
नदिया प्यासी / वहाँ पहुँचकर / जल को ग्रासी।
चोरों के घर / अब गिरवी सब / पंचों के सर,
नैतिकता भी / अज़ब समय है / छल की दासी।

(७)

आँख हमारी / सुखद सपन को / तरसे बाबा,
खुशियाँ सारी / दूर बहुत अब / घर से बाबा।
बढ़े मवाली / शहर-शहर में / लिये दुनाली,
होंठ न खोलें / मगर लोग अब / डर से बाबा।
किसे पुकारें / किस-किस के हम / चरण पखारें,
माथा रगड़ें / अब जाकर किस / दर से बाबा ?
कूके कोयल / अब न डाल पर / रूठे बादल,
गाँव गये हैं / इधर सभी बस / मर-से बाबा।
फूल न दीखें / अब इस मन को / कूल न दीखें,
पेड़ गये हैं / दूर तलक अब / झर-से बाबा।

(८)

मन सूखा है / सहज करे तल / वो जल जीते,
मज़ा तभी है / इस मरुथल में / बादल जीते।
हार न माने / छल-बल-तम से / ग़म से जूझे,
ऐसा यदि वो / तो पल-पल वह / पागल जीते।
फूल खिलेंगे / सुखमय सपने / हमें मिलेंगे,
मुरझायी जो / उस टहनी पर / कोंपल जीते।
चोर खड़े हैं / चहुँदिश बाहर / चोरी का डर,
आज किबाड़ों / पर घर भीतर / साँकल जीते।
गूँज रहे हैं / मधुर कहकहे / बस्ती-भर में,
काँप उठेंगे / तन-मन हँसते / जो खल जीते।

(९)

दे दिखलायी / जिधर लखें हम / बंजर यारो,
आज हो गया / लहर-भरा मन / पत्थर यारो।
कैसे कह दें / अब इस दिल पै / बोझ नहीं है,
कहाँ नहीं है / अपने मन पर / प्रस्तर यारो।
कैसे पढ़ते / चिरपरचित-सी / सुख की भाषा,
बदले सारे / झट पल-भर में / अक्षर यारो।
झेल रहे हैं / अब मन भीतर / जैसी ध्वनियाँ,
शोर नहीं है / इतना इस पल / बाहर यारो।
पूछ रहा है / हर बेबस मन / इक दूजे से,
पकड़ा क्यों है / निठुर समय ने / कॉलर यारो।

(१०)

वे अन्तर की / अधर-अधर की / ख़ुशी लूटते,
गाँव-गाँव की / शहर-शहर की / ख़ुशी लूटते।
जिन्हें बिठाया / सर पर हमने / मान बढ़ाया,
ताज मिला तो / अब घर-घर की / ख़ुशी लूटते।
सब तीरों में / हरदम रहते / अब पीरों में,
वे राजा बन / अब जगभर की / ख़ुशी लूटते।
वे आरी सम / अब तो हरदम / तन को चीरें,
बने कुल्हाड़ी / नित तरुवर की / ख़ुशी लूटते।
बने रात-से / बन्धु समझ अब / उनकी लीला,
अंधकार वे / नित दिनकर की / ख़ुशी लूटते।

तेवरी-विधा को समर्पित साप्ताहिक प्रस्तुति-
सूर्य का उजाला
संपादक- उपेंद्रपाल सिंह 'पवन'
कृष्णापुरी, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

'विरोध-रस' के अनूठे तेवरीकार : दर्शन बेजार

-रमेशराज

विलक्षण प्रतिभा के धनी दर्शन बेज़ार के अब तक दो तेवरी संकलन प्रकाशित हुए हैं। प्रथम तेवरी संकलन-'एक प्रहार : लगातार' अमर क्रांतिकारी सरदार भगतसिंह को समर्पित है, जबकि दूसरा संकलन 'देश खंडित न हो जाए' मानव सापेक्ष कविता के ओजस् कवि सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' की स्मृतियाँ सँजोये हुए है।

'एक प्रहार:लगातार' तेवरी संकलन देश की टुकड़े-टुकड़े होती संस्कृति, नैतिकता और सभ्यता को धर्म की आड़ में बेचने वाले संतों और ताकत के बल पर कानून-व्यवस्था को तहस-नहस करने वाले आतंकवादियों, लूट-बलात्कार में लिप्त तथाकथित समाजसेवियों के विरुद्ध प्रहारात्मक कार्रवाही है। यह कार्रवाही, दियासलाई की तरह आताताई वर्ग को जलाकर राख करने के इरादों, नादों से भरी हुई होने के कारण कुव्यवस्था के जल्लादों, राजनीति के घिनौने प्यादों को रास नहीं आई, इस कारण कवि ने वह संत्रास भी झेला, जो अंग्रेजों के ज़माने में ज़ब्तशुदा कृतियों के लेखकों की वाणी को और मुखर, तेजतर करता रहा था। दर्शनबेज़ार ने आज़ाद मुल्क में प्रताड़ना, दुर्भावना के कोड़े खाए। लेकिन क्रांति के गीत उसी अदम्य साहस के साथ गाए, जो गुलामी भरी व्यवस्था को तोड़ने के लिए आवश्यक होते हैं। आज के वक़्त में विरले ही इस प्रकार क्रांति-बीज बोते हैं। 'विरोध-रस' और 'विद्रोह-रस' से सिक्त 'एक प्रहारः लगातार' की तेवरियाँ पाठक या श्रोता के मन पर आवेग के ऐसे निशां छोड़ती हैं कि पूरा तन-मन स्पंदित, रोमांचित और आक्रोशित होने लगता है। घिनौनी व्यवस्था को बदलने की छटपटाहट, गर्माहट, कुलबुलाहट जब चेतना के 'पर' खोलती है तो एक ऐसी अग्नि की भाषा बोलती है, जिसकी लपटों में कुव्यवस्था के गिरगिटों का झुलस जाना लाजिमी होता है। कवि समाज में खुशहाली, दीवाली और वसंत लाने के लिए पाप और अनाचार के अन्त हेतु ऐसे संत का रूप धारण करता है, जो कबीर-सा अधीर होकर हर प्रशस्ति, पुरस्कार और प्रलोभन को ठोकर मारता है-

"हर किसी अन्याय से लड़ जायेंगे/ अब न समझौता कोई कर पायेंगे।"

'एक प्रहार : लगातार' की 'प्रथम तेवरी' का कथन समूचे देश के नम होते नयन के उस क्रंदन की कथा है, जिसकी व्यथा वहशियों की बर्बर व्यवस्था से उत्पन्न हुई है, जिसमें जनता की चेतना शक्ति प्रसन्न होने के स्थान पर भय के कारण लगातार सन्न हुई है। दलबदलुओं के घिनौने करिश्मों ने मन को सिर्फ ताप दिया है, कुर्सी की लड़ाई ने जन-जन की आशाओं, आकांक्षाओं का क्षय किया है-

"शान अब खोने लगी है देश की/ आँख नम होने लगी है देश की,
वहशियों की सभ्यता काँधों पे अब / ज़िन्दगी ढोने लगी है देश की ।"

जयचंदों, मीरजाफरों के फंदों पर शैदा होते हुए देशद्रोहियों की जमात ने ऐसे हालात पैदा कर दिए हैं कि आज के 'कृष्ण', 'सुदामा' को सत्ता का भाट बनाकर अपना राजपाट सुरक्षित किए हुए हैं । मंदिर और मस्जिदों की सभ्यता, सज़ायाफ्ताओं की शरणस्थली बन गई है। हर तरफ नफरत की दीवार तन गई है । गुण्डे और दादा किस्म के लोगों के गेरुआ वसन, लूट का मिशन हैं-

"फिर यहाँ जयचन्द पैदा हो गए / मीर जाफर जिन पै शैदा हो गए।
मंदिरों की सभ्यता तो देखिए / संत भी गुण्डा या दादा हो गए।।"

सत्ता के महंत जब संत का बाना पहनकर जनता के बीच छल-भरे वसंत के सपने बाँटते हैं तो जनतंत्र की समूची लोकोन्मुखी व्यवस्था को बड़ी खूबसूरती के साथ काटते-छाँटते है। अँधेरे के ये कुत्सित किरदार रोशनी की बात करने वाली

Scanned by CamScanner

हर आँख को तकुओं से बींधते हैं और हर सही आदमी को अनैतिकता-व्यभिचार के दलदल की ओर खींचते हैं। आदमी जब उल्लुओं की भाषा बोलने लगता है तो उसके भीतर एक ऐसा अंधकार जगता है, जिसके प्रतिफल को कवि की लेखनी यूँ बयां करती है-

''जो न पांडव भी जुए में कर सके/ आपने ऐसे भी समझौते किए।
रोशनी की बात की जिस आँख ने / आपने उस आँख में तुकवे किए।''

आदमी के चरित्र पर जब अंधकार की छाया पड़ती है तो हर खूबसूरत चीज़ इस क़दर बिगड़ती है कि उसका पहचाना जाना, या उसे पुनः उसी रूप में ला पाना, इतना कठिन हो जाता है कि सब कुछ काबिले-घिन हो जाता है-

'दृष्ट दुर्योधन बिठाने फिर लगा/ सभ्यता को अपनी नंगी जाँघ पर।

या

'छीन ले रोटी पराये हाथ से/ पेट की चाहत कभी ऐसी न थी।'

रोटी-बोटी और लँगोटी के सौदागर जब अजगर की तरह आदमी के सुखचैन को निगलने लगते हैं तो एक ऐसा अराजक समाज अपना सर उठाने लगता है, जिसके स्वर अहंकार, उन्माद से भरे होते हैं, जिसके भीतर दूसरों के दुखदर्द में शरीक होने वाले विचार, इस कदर मरे होते हैं कि उन्हें मीठी जुबान देना या सत्य की मंगलकारी पहचान देना, बालू पर नाव को खेना होता है। हर तरफ एक विषैली हवा बहने लगती है, मसीहा की सूरत में, क़ातिलों की मुस्कानों का जादू किसी कबीर या दादू को पैदा होने से पहले ही मारने लगता है। 'निराला' भाटों की तरह अनैतिक आचरण की आरती उतारने लगता है। कवि के सामने चापलूसी से भरा यह वातावरण कई सवालों और मलालों को जन्म देता है-

''पुरस्कार हित बिकी क़लम, अब क्या होगा/ भाटों की हैं जेब गरम, अब क्या होगा।
प्रेमचन्द, बंकिम, कबीर के बेटों ने / बेच दिया ईमान-धरम, अब क्या होगा।'

डर मेहमान की तरह जब घर आने लगता है तो आदमी अपनी परछाई से घबराने लगता है। झौंपड़ी के एहसास जब महल के पास जलने लगते हैं, आस्थाओं के बीच जब छल के मारीच उछलने लगते हैं। वैद्य विष-हरण के मंत्र भूलकर साँपों की तरह दंश का आभास देता है, गुलाबी चलन दुर्वास देता है। हर सुबह या शाम आतंक का पैगाम देने लगती है। आँखों में एक बेचैनी जगने लगती है, हर किसी को जब रोशनी ठगती है तो इन सब बातों के विकल्प क्या हैं ? इन त्रासद हालातों से जूझने के हम सबके संकल्प क्या हैं ? एक तेवरीकार, अपने शब्दों और विचारों के औज़ार पैनाता है और एक ही रास्ता सुझाता है-

'आज़ादी क्या मिल सकती केवल कोरे नारों से/ इसीलिए लक्ष्मीबाई जूझी थीं तलवारों से ।'

'विरोध' और 'विद्रोह-रस' से ही लबालब दर्शन बेज़ार के दूसरे तेवरी संकलन 'देश खंडित न हो जाए' में तेवरियों का तेवरीपन ऐसे तथ्यों के चिंतन, मनन से ओत-प्रोत है, जिसमें बंजर होते घर-शहर के रिश्तों के लिए शहद का स्रोत है। डॉ. रवीन्द्र भ्रमर इस संग्रह को लोक को समर्पित करते हुए कहते हैं-''दर्शनबेज़ार की तेवरियों में तल्ख़ी हैं, आक्रोश है। कवि ने अपने मंतव्य और सामाजिक सरोकार को स्पष्ट करते हुए आज के आदमी की व्यथा-कथा, सामान्य जीवन की त्रासदी, लूट और भुखमरी की बखिया उधेड़ना ही अपना लक्ष्य माना है। इसीलिए दुराचारियों, सांप्रदायिक आचरणों, कुव्यवस्था के पोषकों के विरुद्ध कवि सामाजिक एकता के आह्वान के साथ-साथ जुल्म और अन्याय से जूझने के लिए प्रेरित करता है।''

कवि दर्शन बेज़ार के मन के भीतर का हाहाकार अँधेरे का सत्कार नहीं करता। वह तो उसे चीरकर रोशनी की नयी तहरीर लिखना चाहता है। गुलामी की जंजीर तोड़कर आदमी की तक़दीर बदलने का प्रयास करता है, जन-जन के मन में बसी हर तीर की पीर और नीरमय बेबसी को हरता है-

दीप बनकर अब अँधेरा चीर दो/ रोशनी की लिख नयी तहरीर दो।

जहाँ ऋचाएँ घायल हों, आयतें जख़्मी हों, दीवारों पर लहू की इबारतें, सिलसिलेवार आफतें जनता की नियति,

Scanned by CamScanner

सहमति, अवनति का आधार बन चुकी हों, गर्दनें बोझ के कारण झुकी हों, साँसें रुकी-रुकी हों, वहाँ तेवरीकार दर्शनबेज़ार इस ग़म-भरे माहौल को मखौल नहीं, अपनी वेदना का अंग बनाते हुए बदरंग होती दुनिया को यूँ बचाने का प्रयास करते हैं-

'आदमी की हर कहानी दुख-भरी लिखनी पड़ी/ बात कहानी थी अतः खोटी-खरी लिखनी पड़ी।
जब ग़ज़ल से पौंछ पाया मैं न आँसू की व्यथा / तब मुझे बेज़ार होकर 'तेवरी' लिखनी पड़ी।

कवि प्रेमिका के आलिंगन से क्रंदन को उत्पन्न नहीं करता और न बलात्कार की शिकार नारी के नयन में चितवन के वाण टटोलता है और न उसे सत्ता या सड़ाँध-भरी व्यवस्था के दलदल में कोई खिलता हुआ कमलदल दिखाई देता है, उसे तो तन-मन को चीरने वाले पतेल जैसे तालमेल और खेल दिखाई पड़ते हैं । वह चुम्बन और सिसकन में अन्तर कर, बार-बार सिहर-सिहर, शहर या गाँव के बाहर या भीतर बस यही मंज़र देखता है कि अधोमुखी चिन्तन ने किस तरह समाज की लाज को ढकने के बजाय उसे उघारा है। हमें किसी और ने नहीं, हमारे अंधे सोचों ने ही मारा है। उपचार के नाम पर भोग-विलास के मीठे ज़हर को उतारा है। हमने प्रेमिका को बाँहों में भरने के जोश को आक्रोश के खाने में सँवारा है। इसी कारण तो कवि ने ऐसे चिन्तकों को फटकारा है-

''व्यर्थ है अभिव्यंजना सिंगार की / चाँदनी मेहमान है दिन चार की।
आँख में आँसू भरे हैं प्रीति के/ क्या करेगी अर्चना अभिसार की?
रोटियाँ पहले मुहैया कीजिए/ फिर ग़ज़ल फरमाइएगा प्यार की।''

जिस समाज में ज़िन्दगी के छन्द के सारे चरण सिसकते हुए हों । उनमें टीस के व्याकरण हों, वेदना में पलते हुए वातावरण हों, सत्य के होते अपहरण हों, भूखे पेट के कारण रात-रात भर आत्मा के जागरण हों । धर्म, घोर विषाद का मर्म बन जाए। इन्सानों के ख़ून से हर गली हर सड़क सन जाए। टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा हर आँगन बन जाए, खुशी घने दुखदर्दों को जन जाये, प्यार-भरा संवाद चाकू-सा तन जाए। प्यार के अक्षर, अर्थ में खंज़र साबित हों, ईमानदार क़दम-क़दम पर पराजित हों । एक दहशत भरे सन्नाटे के चाँटे गाल को लाल करें, दीप अँधेरे की आधारशिलाएँ धरें, सबके मन घाव, तनाव और अलगाव से भरें, दुराचारियों का विरोध करने से डरें, ऐसे में रचनाकार का दायित्व, समाज के भीतर बर्फ-सी जमी कायरता के ऊपर तब तक अंगारे रखते रहना है, जब तक कि इसे नदी होकर नहीं बहना है। कवि का भी यही कहना है-

''इस दौर में सबको पड़े जब जान के लाले / ढहती हुई दीवार भला कौन,सम्हाले।
जुल्म सहने की भी हद होती है सितमगर/ डर है कहीं बेज़ार भी खंज़र न उठाले।''

कविता से जब चाकू, खंज़र, तीर, तलवार का काम लिया जाता है, तो नैतिकता के कंगालों, चरण वंदना करते दरबारी लालों, जुबानों पर पड़े तालों, मोटी-मोटी खालों के काँपने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जनता कायरता के स्थान पर एक अग्नि-लय को गुनगुनाती है और ऐसा तूफान उठाती है, जिसका नाम क्रांति है-

'नफ़रत को आग लगा डालो/ जुल्मों की नींव हिला डालो
अन्याय-द्वेष की दुनिया का/ जड़ से अस्तित्व मिटा डालो।'

क्रांति से भरा हुआ आशय जब आग का परिचय देने लगता है, तो क्रांति के रास्ते में आये सारे संशय खत्म होकर विजय का संकेत देने लगते हैं। समय अपनी लय बदल देता है। हर उलझी समस्या का यकायक हल देता है। कल्पनाओं को वास्तविकताओं का भूतल देता है। सूखे हुए खेतों जैसे मन को प्रेम का जल देता है। प्रेम की मुरझायी टहनियों पर वसंत, उन्माद, वाद-विवाद, विषाद का अंत कर देता है, हर कोई एक चैन की साँस लेता है और सौंगन्ध खाता है-

'फूट के अब पाँव हम जमने न देंगे/ एकता के वृक्ष को कटने न देंगे।
व्याकरण जो गढ़ रहा है रोशनी का / वह दिया बेज़ार अब बुझने न देंगे।।

दीपों को जलाये रखने के संकल्प जब तक मरते नहीं हैं, तब तक यह भी तय है कि अँधेरे बाज़ और गिद्ध की तरह बस्तियों-वादियों में उतरते नहीं हैं । इसके लिए आवश्यक होता है कि जो लोग औरों के दुख-दर्द बाँटने के लिए अंगारों पर सोये हैं, उनकी गाथाओं को भी ज़िन्दा रखा जाए और हर दुराचार को धिक्कारा जाए, उसे शर्मिन्दा रखा जाए। 'देश

Scanned by CamScanner

खंडित न हो जाए' की तेवरियों का यह यज्ञ सही अर्थों में शहीदों के नाम का ही मंत्रोचार है। एक विकृत समाज का क्रांतिकारी उपचार है। इसमें उन किरदारों के प्रति श्रद्धा और नमन है, जिनकी शहादत के कारण ही आज ज़िन्दा यह वतन है। यही इन तेवरियों का तेवरीपन है।

जहाँ तक इन तेवरियों के शिल्प संबंधी मूल्य का सवाल है तो इस बारे में डॉ० भ्रमर कहते हैं-''शिल्प तो मात्र ऊपरी खोल है। उस पर मखमल चढ़ाइये, मोती-मानिक टाँकिए, उससे तलवार की क़ीमत नहीं बढ़ती। जिसे कविता का कथ्य या भाव कहते हैं, वही असल इस्पात है, धारदार तलवार।''

इस प्रकार हम पाते हैं कि दर्शनबेज़ार की तेवरियों का संसार, उस बीमार और मक्कार समाज का सर क़लम करने का एक पैना औंजार है, जिसमें गलाव की भरमार है।

'सीप में समंदर'(ग़ज़ल संग्रह) की ग़ज़लों में कितना ग़ज़लपन?

-रमेशराज

ग़ज़ल हिंदी या उर्दू, किंसी में भी लिखी जाये, लेकिन अपने शास्त्रीय सरोकारों के साथ लिखी जाये। ग़ज़ल के ग़ज़लपन को समाप्त कर ग़ज़लें न तो कही जा सकतीं हैं, न लिखी जा सकती हैं। इसे हिंदी साहित्य का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि ग़ज़ल के नियमों, उपनियमों की हत्या कर हिंदी में ग़ज़ल को प्राणवान बनाये जाने का कथित सुकर्म आज युद्ध-स्तर पर जारी है।

समीक्ष्य काव्य-कृति 'सीप में समंदर' भी एक ऐसी कृति है जिसमें शिल्पगत कमजोरियों को ग़ज़ल की खूबी बताकर हिंदी गजल घोषित किया गया है। इस ग़ज़ल संग्रह के रचयिता ग़ज़ल के क्षेत्र के ख्याति प्राप्त ग़ज़लकार डॉ. रामसनेहीलाल 'यायावर' हैं।

इस संग्रह की भाषा, शिल्प और कथ्यगत कमजोरियों को पुष्ट करते हुए संग्रह की भूमिका में डॉ. उर्मिलेश लिखते हैं कि-''डॉ. यायावर ने उर्दू गजल के पारंपरिक मिथक को तोड़ते हुए कुछ अलग हटकर काम किया है। मसलन, उर्दू ग़ज़ल में हर शेर स्वतंत्र सत्ता रखता है, लेकिन डॉ. यायावर की अधिसंख्यक गजलों के शेर एक ही विषय को आगे बढ़ाते हैं।.. ...डॉ. यायावर की ज्यादातर ग़ज़लें मात्रिक छंद में लिखी गयी हैं। उर्दू में ग़ज़लें कही जाती हैं। डॉ. यायावर ने गजलें लिखी हैं। इस प्रक्रिया में उनका गीतकार-रूप परोक्ष रूप से हाबी रहा है।''

डॉ. उर्मिलेश के तथ्यों की रोशनी में यदि इन कथित ग़ज़लों का मूल्यांकन करें तो इन ग़ज़लों से ग़ज़ल का प्राण-तत्व कथ्य (प्रेमिका से प्रेमपूर्ण बातचीत) तो गायब है ही, ढांचे (शिल्प) की पहचान वाली वे विशेषताएं भी लुप्त हैं, जिससे ग़ज़ल का ग़ज़लपन पहचाना जा सकता है। पारंपरिक मिथक को इस कदर तोड़ा गया है कि ग़ज़ल की मुख्य विशेशता-' हर शेर के कथ्य की स्वतंत्र सत्ता' को भी तहस-नहस कर डाला गया है। गीत-शैली में लिखी गयीं इन कथित ग़ज़लों में ग़ज़ल की तो बात छोड़िए ग़ज़लांश कितना है, यह भी शंका की गिरफ्त में है।

प्रथम ग़ज़ल के मतला-'कुछ धरती कुछ अम्बर बाबा, माया और मछन्दर बाबा' के माध्यम से कवि क्या संदेश देना चाह रहा है, बिलकुल अस्पष्ट है। भाई 'धरती, अंबर, माया और मछंदर हैं तो हैं, इसमें बाबा क्या कर सकते हैं।'

ग़ज़ल की एक विशेषता और होती है-उसका बहर-बद्ध होना। डॉ. उर्मिलेश के मतानुसार तो यह विशेषता भी इन ग़ज़लों से लुप्त है क्योंकि ये मात्रिक छंदों में 'कही नहीं', 'लिखी गयी' हैं। क्या ग़ज़ल 'कहने' के स्थान पर 'लिखने' से उर्दू ग़ज़ल के स्थान पर हिंदी ग़ज़ल हो जाती है? हिंदी में ग़ज़ल के सिद्धांतों की ये कैसी जलती हुई बाती है जो ग़ज़ल के नाम पर ग़ज़ल का घर जलाती है।

ग़ज़ल इस तर्क के साथ कि-''भूख और प्यास से मारी हुई इस दुनिया में इश्क ही हकीकत नहीं, कुछ और भी है''(डॉ. रामनिवास शर्मा 'अधीर', सीप में समंदर, पृ०६) यदि नयी हकीकत -''व्यवस्था के ठेकेदारों के विरुद्ध कलमबंद बयान (सीप में समंदर,डॉ. यायावर) से रू-ब-रू हो सकती है तो इसी संग्रह के पृ. २६ पर प्रकाशित ग़ज़ल का प्रेमिका को

Scanned by CamScanner

बांहों में भरने का जोश कौन-से आक्रोश की हकीकत या अभिव्यक्ति है? 'होश में हैं फिर भी पैमाना हमारा क्यों नहीं है, हम हैं, साकी है, ये मयखाना हमारा क्यों नहीं है?' के माध्यम से डॉ. यायावर आखिर कहना क्या चाहते हैं? क्या मयखाने में बैठकर शराब के जाम पर जाम गले में उतारते हुए छैनी-हथौड़े की बात करना वैचारिक मैथुन के अतिरिक्त किसी और रूप में स्वीकृत किया जा सकता है? प्रेमिका को बांहों में भरकर व्यवस्था के विरुद्ध की गयी तलवारबाजी एक साथ दो-दो मोर्चों पर सफल हो सकती है?? क्या सीत्कार से पैदा हुए इस नकली चीत्कार का ही नाम हिंदी ग़ज़ल है?? ग़ज़ल से उसकी मूल आत्मा उसके शिल्प अर्थात् उसकी काया को भी क्षत-विक्षत करना हिंदीग़ज़ल बनाना है तो ऐसी काया पर आत्ममुग्ध हिंदी के ग़ज़लकारों या इसके पक्षधरों के समक्ष कोई तर्क रखना ही बेमानी है।

'सीप में समंदर' ग़ज़ल संग्रह की ग़ज़लें चीख-चीख कर इस बात का प्रमाण देती हैं कि इनमें ग़ज़ल का ग़ज़लपन सिसक रहा है। यथा- पृ. ३० पर ग़ज़ल के मतले से काफिया ही गायब है तो अन्य काफिये 'मौन' को 'मौन' और 'कौन' को 'कौन' से मिलाकर हांफते हुए नज़र आते हैं। ग़ज़ल में काफियों की निकृष्ट व्यवस्था देखिए-

या तो संवादों में विष है, या फिर केवल मौन है,
प्रश्नाकुल है आज समय का यक्ष युधिष्ठर मौन है।
या तो जब-जब सुने आपने या निर्जन में दुहराये,
वरना अपने इन गीतों का सुनने वाला कौन है?
कातिल बोला है चिल्लाकर किया हुआ दुहराऊंगा,
डर कर सहमे उड़े कबूतर किंतु अदालत मौन है।
कोई कमरे में खिड़की से चुपके-चुपके कूद गया,
कुर्सी पूछ रही है यारो! दरवाजे पर कौन है।

पृ. ९५ पर 'श्रीमान' की तुक 'प्राण', पृ. ७१ पर 'भूमिष्ठ' की तुक 'उच्छिष्ट', पृ.५७ पर 'मादा' की तुक 'राधा' या 'आधा', पृ.५० पर 'सुलाया' की तुक 'लाया', पृ. ४७ पर 'जलता' की तुक 'घुलता', पृ. ३७ पर 'तमाशा' की तुक 'भाषा' या 'आसा' यदि उत्कृष्ट काफियों के नमूने बन सकते हैं तो हिंदी ग़ज़ल के ऐसे समर्थक ग़ज़ल के नाम पर जितना चाहें उतना तन सकते हैं। जहां तक इन ग़ज़लों में बहर के स्थान पर मात्रिक छंदों के प्रयोग का सवाल है तो इससे भले ही ग़ज़ल के ग़ज़लपन का एक और अंग भंग और बदरंग होता हो, किंतु इन ग़ज़लों में मात्रिक छंदों का प्रयोग भी शुद्ध हुआ हो, यह भी संदिग्ध है। पृ.७३ पर प्रकाशित ग़ज़ल के दूसरे शेर के दूसरे मिसरे के साथ-साथ ऐसी कई अन्य ग़ज़लें भी इस तथ्य की गवाह हैं कि हिंदी-छंदों के नाम पर भी एक रोग का योग है। अस्तु 'सीप में समंदर' ग़ज़ल संग्रह भले ही अपने कथ्यात्मक ओज के लिये प्रशंसनीय है किंतु इन गजलों में गजलपन कितना है, इसे लेकर कुहरा घना है। -रमेशराज

'इक्कीसवीं सदी के तेवरीकार'

तेवरी संग्रह हेतु तेवरियाँ आमंत्रित

रमेशराज के संपादन में शीघ्र प्रकाश्य तेवरी-संग्रह- 'इक्कीसवीं सदी के तेवरीकार' हेतु तेवरीकार अपनी मौलिक एवं स्तरीय पांच तेवरियाँ अपने परिचय व छाया चित्र के साथ शीघ्र भेजें।

Scanned by CamScanner

दोहे

रामानुज त्रिपाठी

हवा पेड़ के कान में कहती कैसी बात।
सुन कर सहमें डालियां, थर-थर कांपें पात।
खड़े गवाही दे रहे ठूंठ आम के पेड़
हरियाली को बाग से मौसम रहा खदेड़।
पीछा कर के दूर तक मार-मार पाषाण
मिल कर प्रश्नों ने किया उत्तर को निष्प्राण।
एक हाथ में धूप हैं, एक हाथ में छांव
अब तो जैसे भी सधे, वही लगाऊं दांव।
डाल-डाल पर जुट गई अब गिद्धों की भीड़
कहां बसेगा 'ले बया, कहां बनाए नीड़।

ग्राम प्रस्ट-गरेयें सुलतानपुर (उ०प्र०)

कृष्ण स्वरूप शर्मा 'मैथिलेन्द'

सदा पूजते ही रहे, मंदिर में पाषाण।
मानवता भूखी पड़ी सीढ़ी पर निष्प्राण।
दिया खुदा ने एक सा हर इंसानी रूप
धूप छांव में दो हुए, मिल कर एक स्वरूप।
नहीं धर्म की डोर को, पकड़ो इतना भींच
कटें न मानव कर कभी, और जोर से खींच।
धरती पर घटने लगे, कौए, चीलें, गिद्ध
संसद में अब बढ़ रहे, खुद को करते सिद्ध।
दर्पण कुछ कहता नहीं, मौन दिखता रूप
अपनी अपनी व्याख्या, कहें रात को धूप।

-म.आ.व.७आवा.मंडल उपनिवे. होशंगाबाद

रघुनाथ प्रसाद विकल

धूप-छांव के खेल में, फसल हुई मशहूर।
बादल ने है कर दिया, सूरज को मजबूर।
वैसे ही कच्ची सड़क उस पर यह बरसात
जूता कीचड़ में सना, मौसम की सौगात।
झेल गये गर्मी विकट, सरदी पाला मार
लेकिन अब बरसात में कच्चे घर बीमार।

९ - किदवई पुरी (पटना)

हाइकु

डॉ. गोपालबाबू शर्मा

अमृत-कुम्भ
पहुंच गया फिर
दैत्यों के हाथ।

परिवर्तित
आंगन की तुलसी
नागफनी में।

कोल्हू का बैल
बन गया आदमी
कुछ न सूझे।

सोन चिरैया
खा जाएं नोंच कर
घर के बाज।

सुंदर लगें
प्यास नहीं बुझाते
ओस के मोती।

मां बाप ढूंढ़ें
लाठियां बुढ़ापे की
दीखती नहीं।

जनता गूंगी
नेता हुए बहरे
देश गर्त में।

-८२ सर्वोदय नगर,
सासनीगेट,
अलीगढ़-२०२००१(उ०प्र०)

हाइकु गीत

नलिनी कांत

प्रेम तो मौन
निवेदन प्यार का
हिमालय सा।
शुभ्र शीतल
स्वच्छ पावन किसी
जलाशय सा।
व्याकरण न
पूछो कभी किसी से
परिणय का।
यह मिलन
मन्दिर सुनसान
दो हृदय का।

-अंडाल, पं. बंगाल

राजकुमार मिश्र की दो तेवरियां

कदम-कदम पर ठोकर खाई,
कभी ज़िंदगी सँभल न पाई।
देता है उपदेश धर्म के,
रँगे गेरुआ वस्त्र कसाई।
इतना झेला दुःख-दर्दों को,
नैन हुए हैं दरिया भाई।
ये कैसा हर ओर सवेरा,
देती केवल रात दिखाई।
रहबर राहजनी पर उतरे,
कैसी नयी सदी ये आई।
राजकुमार रंक बन बैठा,
जिसने सच की रीति निभाई।

२.

हुई भावना पत्थर बाबा,
इन्सां बद से बदतर बाबा।
सुख का सपना जब-जब आता,
दे जाता हमको डर बाबा।
अब मानव या हैवानों में,
रहा कहां है अंतर बाबा।
राजकुमार हार बैठा है,
जीवन का हर मंजर बाबा।

-सराय हरनारायन, अलीगढ़

Scanned by CamScanner

तेवरी की तुलना ग़ज़ल से करना हास्यास्पद

-डॉ. हरिवंश प्रसाद सुक्ल 'मधुकर' 'झंझट'

'सूर्य का उजाला' के माध्यम से रमेशराज की तेवरियों' की प्रकाश किरणें लगभग सभी हिन्दी साहित्य के रचनाकार, साहित्यकार तथा हिन्दी प्रेमियों के समक्ष अपना-स्वरूप प्रकट कर चुकी हैं। श्री रमेशराज का गम्भीर चिन्तन, अनुभव की प्रामणिकता, दृढ़ संकल्प शक्ति तथा साहित्येतिहास का गम्भीर तत्व-निवेसी अध्ययन हिन्दी काव्य रचना के क्षेत्र में नया संदेश लेकर आया हैं।

तेवरी के रूप में उन्होंने जिस नये काव्य-रूप की स्थापना की है,उसका व्यापक एवं गम्भीर चिंतन का क्रम देख कर लगता है कि हिन्दी के प्रबुद्ध वरिष्ठ साहित्यकारों एवं रचनाकारों ने इस नये प्रयास की सराहना की है। मेरा मानना है कि 'तेवरी' शब्द ही अपने आप में अपनी परिभाषा, स्वरूप तथा स्वतंत्र अस्तित्व-बोध का परिचय दे चुका है। वस्तुतः- 'तेवरी' अर्थात् 'तेवर' वाली, अभिव्यक्त की मुद्रा तथा कथन की भंगिमा-एवं वैचारिक ओजस्विता से परिपूर्ण रचनात्मक नव चेतना का प्रतीक है। अभिव्यक्ति की भंगिमा, व्यंजना का स्वरूप तथा दृश्य जगत की युगीन यथार्थ को आन्तरिक बोध शक्ति का अनुभव और चिन्तन की गहराई से उद्भूत होकर उपस्थित होती है जिसमें युगीन विसंगतियों तथा-मानव जीवन के अस्तित्व के संकट से उत्पन्न प्रतिक्रिया स्वरूप आक्रोश, क्रोध आर्थिक एवं सामाजिक सरोकारों के यथार्थ चित्र हमें उद्वेलित एवं संत्रस्त जीवन के विविध पक्ष को साकार करते हैं। 'तेवरी' में अभिव्यक्ति की भंगिमा ही मुख्यरूप से उसे काव्य-रचना की सतत् प्रवाहवान धारा में नया स्थान प्रदान करने की व्यापक योग्यता रखती है। हिन्दी के विकास की यात्रा में ऐसे कितने पड़ाव आये हैं जिसमें वैचारिक दृष्टि से जनरुचि के अनुकूल नये मोड़ अपने नये रूप से विकसित हुए हैं। हिन्दी का काव्य-शास्त्र, संस्कृत से प्रभावित रहा है जिसमें काव्य के स्वरूप, उसके कथन की भंगिमा तथा उक्तिवैचित्र एवं मानव भावों के सघनतम स्वरूप को शब्द वाणी प्रदान करने का सफल प्रयास किया गया है। यह सर्वविदित सत्य है कि संसार की किसी अन्य भाषा में ऐसा व्याकरण नहीं मिलेगा जैसा संस्कृत एवं उसकी पुत्री हिन्दी में उपलब्ध है। प्रत्येक शब्द शोधयुक्त अपनी प्रकृति को स्वयं कह देता है एवं मानव शरीर में उसकी उत्पत्ति का उदगम स्थल निर्धारित है। अस्तु! तेवरी में भी इसी प्रकिया एवं सत्य को देखना चाहिए।

मैंने अपने पिछले एक पत्र में 'तेवरी' पर विचार करते हुए समय की मांग मानकर हिन्दी में काव्य रचना में किये गये अन्य पूर्व प्रयोगों की ओर संकेत कर कहा था कि श्री रमेशराज द्वारा इस ओर किया गया प्रयास भी अपनी मान्यता और मूल्यांकन एवं एक स्वतंत्र काव्य विधा की अपेक्षा रखता है। 'तेवरी' में रचनात्मक ओजस्वी चेतना के साथ ही उसमें वैचारिक गहराई तथा मानव-जीवन के उच्चतम् आदर्श, उद्देश्य तथा उसकी अध्यात्मिक उपलब्धि एवं सौन्दर्य बोध का स्वतंत्र चिंतन उसे निश्चित ही अपना गौरवपूर्ण प्रतिष्ठित पद प्रदान कर सकता है। गेय होकर भी उसे अश्लीलता एवं मांसल यौन विकृतियों से दूर रहना अधिक श्रेयस्कर है। 'तेवरी' में हाइकु का प्रयोग उसके व्यापक स्वरूप को ही प्रकट करता है। इसी प्रकार षदपदी आदि छंद विधान उसके नवीनतम तेवर को ही प्रकट करते हैं। साहित्य में हास्य-व्यंग्य की एक स्वतंन्त्र विधा लगभग सभी भाषाओं में पाई जाती है। हिन्दी का हास्य-व्यंग्य साहित्य बहुत ही समृद्ध है।

परम्परा से प्राप्त काव्य-शास्त्र की रुढ़िग्रस्त मान्यताओं को भी तेवरी की शिल्पगत विशेषताओं ने जिस विवेकशील कौशल से स्वीकार किया है, वह इस विधा को निश्चित ही नया रूप प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम सिद्ध होगी। तेवरी की तुलना ग़ज़ल से करना हास्यास्पद है। ग़ज़ल एक विदेशी मान्यता की रचनात्मक विधा है जबकि तेवरी स्वदेशी वैचारिकता एवं अध्यात्मिक चेतना की स्वतंत्र विधा है।

-१२६/६४ जे.बलार तिवारी भवन, गोविन्द नगर, कानपुर. २०८००६

Scanned by CamScanner

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस–निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन)

लेखक–रमेशराज

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि–रमेशराज

प्राप्ति स्थल– बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

सार्थक-सृजन प्रकाशन के महत्वपूण तेवरी संग्रह

(१) अभी ज़ुबाँ कटी नहीं	संपादक-रमेशराज
(२) कबीर ज़िन्दा है	संपादक- रमेशराज
(३) इतिहास घायल है	संपादक-रमेशराज
(४) एक प्रहारः लगातार	तेवरीकार- दर्शन बेजार
(५) देश खण्डित हो न जाए	तेवरीकार- रमेशराज

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़-२०२००१

भारत सरकार पंजीकरण संख्या–51714/87

बुक पोस्ट-मुद्रित सामग्री

सेवामें,

....

....

....

....

संपादक/प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक सृजन प्रकाशन कार्यालय १५/१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट अलीगढ़ के लिये शारदा प्रिंटिंग प्रैस हेतु शिवम् प्रिंटर्स महेंद्र नगर अलीगढ़ से मुद्रित।

Scanned by CamScanner